॥ अर्गलास्तोत्रम् ॥

॥ श्री॥

श्रीचण्डिकाध्यानम्

ॐ बन्धूककुसुमाभासां पञ्चमुण्डाधिवासिनीम् ।
स्फुरच्चन्द्रकलारत्नमुकुटां मुण्डमालिनीम् ॥

त्रिनेत्रां रक्तवसनां पीनोन्नतघटस्तनीम् ।
पुस्तकं चाक्षमालां च वरं चाभयकं क्रमात् ॥

दधतीं संस्मरेन्नित्यमुत्तराम्नायमानिताम् ।
अथवा
या चण्डी मधुकैटभादिदैत्यदलनी या माहिषोन्मूलिनी
या धूम्रेक्षणचण्डमुण्डमथनी या रक्तबीजाशनी ।
शक्तिः शुम्भनिशुम्भदैत्यदलनी या सिद्धिदात्री परा
सा देवी नवकोटिमूर्तिसहिता मां पातु विश्वेश्वरी ॥

अथ अर्गलास्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुरृषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीर्देवता, श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतिपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै

मार्कण्डेय उवाच ।
ॐ जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतापहारिणि ।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥ १॥

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥ २॥

मधुकैटभविध्वंसि विधातृवरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ३॥

महिषासुरनिर्नाशि भक्तानां सुखदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ४॥

धूम्रनेत्रवधे देवि धर्मकामार्थदायिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ५॥

रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ६॥

निशुम्भशुम्भनिर्नाशि त्रिलोक्यशुभदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ७॥

वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ८॥

अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ९॥

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चापर्णे दुरितापहे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १०॥

स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ११॥

चण्डिके सततं युद्धे जयन्ति पापनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १२॥

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि देवि परं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १३॥

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि विपुलां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १४॥

विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १५॥

सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १६॥

विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तञ्च मां कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १७॥

देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पनिषूदिनि ।

रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १८॥

प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १९॥

चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंसुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २०॥

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २१॥

हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २२॥

इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २३॥

देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २४॥

भार्यां मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २५॥

तारिणि दुर्गसंसारसागरस्याचलोद्भवे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २६॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः ।
सप्तशतीं समाराध्य वरमाप्नोति दुर्लभम् ॥ २७॥

॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे अर्गलास्तोत्रं समाप्तम् ॥